विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष १२ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२६ • भाद्रपद पूर्णिमा [शक] • दि. ३-९-१९८२ • अंक ३

धम्म वाणी

यथिन्दखीलो पठविं सितो सिया ।
चतुब्भि वातेहि असम्पकम्पियो ।
तथूपमं सप्पुरिसं वदामि,
यो अरियसच्चानि अवेच्च पस्सति ॥

– रतनसुत्तं– ८,

जिस प्रकार धरतीमें गहरी गड़ी हुई इन्द्रकील (नगरस्तंभ) चारों ओरकी तेज हवाओंसे भी कम्पायमान नहीं होती, मैं कहता हूं कि उसी प्रकार वह सत्पुरुष अविचल रहता है जो कि चारों आर्यसत्योंका भली प्रकार साक्षात्कार करता है।

प्रवचन-प्रवाह

आठवां दिन

आज हमारी साधनाके आठ दिन पूरे हुए। अब बहुत थोड़ा समय बचा है। इसका भरपूर लाभ लेनेके लिए भरपूर श्रम करना होगा।

श्रम करनेके लिए ही तो आए हैं। तपनेके लिए, पुरुषार्थ करनेके लिए ही तो आए हैं। जो शाम की धर्म-चर्चा होती है वह वाणी-विलास और बुद्धि-विलासका विषय न बन जाय। जिज्ञासुभावसे, मुमुक्षुभावसे धर्मकी इस विधिको, धर्म धारण करनेके तरीकेको ठीक तरहसे समझनेके लिए ही इस धर्म-चर्चाका प्रयोग हो। मुख्य बात तो धर्म धारण करना है। धर्म धारण करनेके लिए अभ्यास करना होता है, प्रयास करना होता है। कैसे प्रयास करें ? विधिको ठीक समझ-समझ कर प्रयास करें तो प्रयास लाभदायक होगा।

आओ, फिर समझें, कैसी है यह साधना ? क्या है यह विधि ? भीतरकी सच्चाई को जानना है और जानकर समतामें स्थित रहना है। कभी-कभी साधकको एक भ्रांति हो जाती है। जो संवेदना मिल रही है उसका मूल्यांकन करने लगता है। मूल्यांकन करता है तो उसीको प्रगतिका मापदंड मान लेता है। एक प्रकारकी संवेदना मिलती है तो मान बैठता है कि साधना बहुत ऊंची है, अन्य प्रकारकी संवेदना मिलती है तो मान बैठता है साधना बहुत नीची है। गलत मापदण्ड हो गया। साधनाका सही मापदण्ड तो यह है कि जो संवेदना प्रकट हो रही है उसे जान रहे हैं और जानकर कितनी समतामें स्थित रहते हैं। प्रगतिका यथार्थ मापदण्ड समता है, संवेदना नहीं।

अन्तर्मनकी गहराइयोंमें जो कुछ एकत्र कर रखा है उसे निकाल बाहर करनेकी ही तो साधना है। कितने लम्बे अर्से से एकत्र ही करते आए हैं। न जाने कैसे कैसे कर्म-संस्कार इकट्ठे कर रखे हैं इस साधना द्वारा न जाने किस समय कौन सा संचित कर्म-संस्कार अन्तर्मनकी गहराइयोंसे उभरकर सतह पर आए, उसकी उदीर्णा हो ? जिस प्रकारका कर्म-संस्कार होगा, उदीर्ण होने पर उसी प्रकारकी संवेदना होगी। सुखद हो सकती है, दुःखद हो सकती है, स्थूल हो सकती है, सूक्ष्म हो सकती है। कौन सा संस्कार उभरकर सामने आया, उससे नहीं मापा जाता कि प्रगति हो रही है कि नही हो रही है। जो भी संस्कार उभरकर सामने आया हमने उसे कैसे देखा ? समता से देखा या समता खो दी ! संवेदना के प्रकट होने पर यदि समता खो दी, फिर राग पैदा करना शुरू कर दिया, द्वेष पैदा करना शुरू कर दिया तो प्रगति नहीं हो रही।

पुरानी आदतके अनुसार, पुराने स्वभावके अनुसार यदि राग या द्वेषकी प्रतिक्रिया हो भी जाय तो देखना यह है कि कितनी जल्दी फिर होश में आ गए। फिर संवेदनाको देखने लगे, समता के साथ। चित्तधारा पर रागका आरंभ, द्वेषका आरंभ होने ही न दें और यदि आरंभ हो गया तो जल्दी-से जल्दी उसे फिर रोक दें, संवर कर लें– यही साधना है।

किस प्रकारकी संवेदना कब प्रकट होगी इसका कोई निश्चय नहीं। इससे हमें कुछ लेना-देना भी नहीं। बहुत बार ऐसा होने लगता है कि शरीरमें एक जैसी सूक्ष्म-सूक्ष्म संवेदनाओंकी धारा बहने लगती है। धारा-प्रवाह अनित्यबोधकी अनुभूति होने लगती है। कहीं कोई स्थूलता नहीं, ठोसपना नहीं, सघनता नहीं। और एकाएक गहरा आपरेशन हुआ कि अन्तर्मनकी गहराइयोंसे कुछ उभरकर आया। शरीर के किसी अंग पर मूर्छा सी छा गयी। किसी अंग पर कोई स्थूल संवेदना जाग पड़ी, फिर कुछ घनीभूत होने लगा। ऐसे हो तो घबराना नहीं है। उसे ही साक्षीभावसे देखना शुरू कर देंगे। देखते-देखते उसका विघटन होता ही जायेगा, उसका विश्लेषण होता ही जायेगा। टुकड़े–

टुकड़े होते-होते सघनता दूर होगी ही। फिर धारा-प्रवाहकी अनुभूति होने लगेगी। तदुपरान्त फिर कोई और संचित संस्कार उभरकर ऊपर आ सकता है। जब तक भीतर संग्रह है, तब तक यह उभार आयेगा ही। संग्रह तो है ही। अतः जब जब उभर कर ऊपर आए, तब-तब अपनी ओरसे संवर कर लें, रोक लगा दें। याने उभार की वजह से नया संस्कार न बनने दें। यही संवर है।

ज्योंही संवर किया याने रोक लगा दी कि प्रकृतिका, कुदरतका विधान, नियम अपने आप काम करने लगता है। संवर किया कि निर्जरा होनी शुरू हो जायेगी। संवर करते ही किसी अन्य संस्कारका फल उभर कर ऊपर आयेगा, उदीर्ण होगी। देखेंगे उसे समता से तो उसकी भी निर्जरा हो जायेगी। उसका क्षय हो जायेगा। संवर करना प्रमुख है। लेकिन संवर ऊपर-ऊपरका नहीं होना चाहिए। ऊपरी-ऊपरी संवरसे इतना ही लाभ होगा कि शरीर और वाणीके दुष्कर्मोंसे बच जायेंगे। लेकिन अन्तर्मनमें मैल बनानेका जो स्वभाव हो गया है उस पर रोक लगानी आवश्यक है। भीतर ही भीतर अन्तर्मनकी गहराइयोंमें मैल पैदा करनेकी जो प्रक्रिया है उस पर रोक लगानी होगी नहीं तो मैलका संवर्धन होता ही जायेगा। इसलिए संवर अन्तर्मनकी गहराइयों तक होना चाहिए।

वैसे आखोंका संवर बहुत अच्छा है, कल्याणकारी है। कानोंका संवर, नाकका संवर, जीभका संवर, कायाका संवर, वाणीका संवर बहुत अच्छा है; कल्याणकारी है। पर सारे संवरोंमें अच्छा मनका संवर है और वह भी संपूर्ण मानसका संवर, अन्तर्मनकी गहराइयों तक का संवर। यह जो भी कुछ भीतर-भीतर संवेदनाएँ हो रही हैं, इसकी अनुभूति अचेतन मनको, अर्धचेतन मनको होती ही रहती है और परिणाम स्वरूप अन्दर ही अन्दर प्रतिक्रिया भी होती रहती है। इससे चित्तधारा पर राग और द्वेष पैदा होता रहता है। और चेतन मनको इस प्रक्रियाका पता ही नहीं रहता। अतः केवल चेतन चित्त तकका संवर इस पर रोक नहीं लगा सकेगा। ज्यों-ज्यों समतामें रहनेका अभ्यास बढ़ेगा; चेतन, अर्धचेतन और अचेतन मनके बीचकी दीवारें टूटेंगी। जो कुछ भीतर हो रहा है सब मालूम होने लगेगा और समग्र मानस समतामें रहना सीखेगा। अतः समग्र मानसमें संवर होगा।

यह गहरा संवर अन्तर्मनकी गहरी ग्रन्थियोंको काटता है। यह बात महज इसलिए नहीं माननी है कि किसी महापुरुष ने कही है या किसी शास्त्रमें लिखी है। अपनी अनुभूतियों से जानना है और जानकर मानना है। तो ही मंगल सधेगा। प्रकृतिके इस नियमको अनुभूतियों से समझेंगे तो स्वतः कल्याण सधने लगेगा। जब अनुभूतियोंके स्तर पर समझमें आने लगता है तब सचमुच गहरा संवर होने लगता है। दुःख विमुक्तिका रास्ता खुलने लगता है। ठीक ही कहा गया है :-

अनिच्चावत सङ्खारा उप्पादवय धम्मिनो।
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति तेसं उपसमो सुखो॥

सचमुच सारे संस्कार अनित्य हैं, उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं---उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय। यही इनका धर्म है। यह ध्रुव धर्म है। यह बदलने-वाली प्रक्रिया कभी नहीं रुकती। परिवर्तनशीलता ही इसका नित्य स्वभाव है। लेकिन बहुत गहराइयोंमें जाकर देखेंगे तो मालूम होगा कि उत्पाद होकर जो व्यय हुआ, बेहोशी की अवस्थामें व्यय हुआ। अतः फिर उत्पादका कारण बना। जिस कर्म संस्कारका बीज डाला उसका फल आया और समाप्त हुआ। लेकिन नया बीज फिर पड़ा, फिर फल आया। यों क्रम चलते रहता है। अन्त होता ही नहीं। लेकिन यदि उत्पन्न होकर सर्वथा क्षय हो जाय तो कल्याण हो जाय। अन्तर्मनमें भरे संस्कारोंकी एक परत ऊपर आयी और उतरी तो वास्तवमें उदीर्ण हुई। क्षय हुआ। "तेसं उपसमो सुखो" यों एक पर एक परतका उपशमन होता चला जाय, क्षय होता चला जाय। जितना जितना उपशमन हो, उतना-उतना मुक्त हुआ दुःखोंसे। उतना-उतना सुख आया। सारे ही संस्कारोंका क्षय हो जाय तो परमसुख निर्वाणका साक्षात्कार हो जाय। "निब्बानं परमं सुखं"।

प्रकृतिके दो मोटे नियम हैं उन्हे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। एक तो संवर्धनका नियम है। बढ़ता है, बढ़ता है। विशदीकरण ही होते रहता है। दूसरा यदि रोक लगा दी जाय तो घटने का नियम है। जब घटनेका काम शुरू हो गया और नया बनना बंद हो गया "खीणं पुराणं नवं नत्थि संभवं" तो धीरे-धीरे सारे पुराने संस्कार समाप्त हो जाते हैं। हर व्यक्ति जिसने-जिसने भी सही मानेमें संवर करना शुरू कर दिया, उसीकी कर्म-निर्जरा शुरू हो गयी। कितना भी कर्म-संग्रह क्यों न हो, अगर नया संग्रह करना बंद कर दें तो पुरानोंको समाप्त होनेमें, कम देर लगे या ज्यादा देर लगे, पर समाप्त होंगे ही।

प्रकृतिके इस नियमको जाननेके लिए समझें कि यह चित्तधारा किस प्रकार बहती है। चित्तधाराको आगे बढ़नेके लिए प्रतिक्षण आहार चाहिए। नया संस्कार एक आहार है, पुराने संस्कारोंका फल दूसरा आहार है। इन दोनोंमेसे कोई न कोई आहार मिलता है तो यह चित्तधारा आगे बढ़ती है। बहुधा होता यह है कि चित्तधाराको जब हम एक आहार देते है, एक नया संस्कार डालते हैं तो रुकते नहीं। अगले क्षण फिर वैसा ही आहार देते हैं। यों क्षण प्रतिक्षण आहार देते चलते हैं। किसी बातको लेकर क्रोध आया तो बड़ा नन्हा सा क्षण होता है क्रोध का, पलक झपकने मात्रमें कितने ही शत-सहस्त्र कोटि बार उत्पन्न होकर नष्ट होनेवाला क्षण। लेकिन क्रोधका संस्कार पैदा करते ही अगले क्षण फिर क्रोध पैदा किया। अगले क्षण फिर क्रोध। यों यह क्रोध ही क्रोध के संस्कार इस चित्तधारा को देर तक आगे बढ़ाते चलते हैं। कभी तो घंटो क्रोध चलते रहता है। क्रोध रुका तो कोई और संस्कार बनाना शुरू कर देंगे। वह चलेगा देर तक। फिर कोई और। कभी भय। कभी वासना। कभी कुछ और। यों पुराने संस्कारो के नष्ट होनेकी बारी ही नहीं आती। क्षण-क्षण नया ही बनाए जा रहे हैं। यदि हम संवर कर लें याने रोक लगा दें तो नए संस्कार नहीं बनते। तब चित्तधारा किसके बल पर चलती है? क्योंकी हमने नया संस्कार नहीं बनाया तो कोई न कोई संस्कार-बीज, जिसका फल हो सकता है कुछ देर बाद आनेवाला हो, अब जल्दी पक कर आयेगा। इसे विपाकका त्वरितिकरण कह सकते हैं। तुरन्त कोई पुराना कर्म-संस्कार चित्तधारा पर अपना फल लेकर आता ही है। यही उदीरणा है। आया कोई पुराना कर्म-संस्कार चित्तधारा पर अपना फल लेकर और उसके सहारे चित्तधारा आगे बढ़ने लगी। जैसा कर्म था वैसा ही फल आया। हम उसे समता से, प्रज्ञा से देखने लगे तो हुआ निरोध उसका। जितने-जितने पुराने क्षीण होते चले जायेंगे, उतना-उतना हल्कापन आयेगा ही। सही मानेमें सुख आयेगा। दुःखोंसे छुटकारा होगा।

विधि की पूर्णता इस बातमें है कि अन्तर्मनकी गहराइयोंमें जो कुछ हो रहा है उसे जानें और समता में रहें। यदि हम केवल ऊपरी-ऊपरी सतही-सतही सच्चाईका अनुभव कर रहे हैं तो ऊपरी सतह तक समता में रहे। यदि एक-एक कदम सूक्ष्मताकी ओर बढ़ रहे हैं तो जिस-जिस स्तर तक पहुँचे उस उस तक समता में रहे। यों अभ्यास करते-करते सारा मानस चेतन हो उठे तो सारे मानस पर समता स्थापित हो जाय।

अनुभूतियोंसे समझेंगे कि शरीरकी संवेदनाओंका चित्तधारा से क्या संबंध है? और चित्तधाराका शरीरकी संवेदनाओंसे क्या संबंध है? किस प्रकार चित्त (MIND) पदार्थ (MATTER) में और पदार्थ (MATTER) चित्त (MIND) में परिवर्तित हो जाता है। क्रोध जागा और शरीरमें अग्नि-प्रधान परमाणु उत्पन्न होने लगे। भय जागा, वायु-प्रधान परमाणु उत्पन्न होने लगे और उनकी संवेदना शरीरमें होने लगी। शरीरमें जलनकी संवेदना हो रही है या कंपन-धूजनकी हो रही है, कितना गहरा संबंध है चित्ताका शरीरके साथ! जिस प्रकार के नए संस्कारका निर्माण करते हैं शरीरमें उसी प्रकारकी संवेदनाका निर्माण करते हैं। जब पुराने संस्कार बाहर निकलेंगे तो तो संवेदना पैदा करके ही निकलेंगे। हर क्रोधके संस्कारने अग्नि तत्व प्रकट किया था। अब यदि पुराने क्रोधके संस्कार बाहर आ रहे हैं तो पुनः अग्नि धातु ही जागेगी। गर्मी महसूस होगी। इस प्रकार उत्पन्न संवेदनाको यदि हम समतासे देखते जायेंगे और प्रतिक्रिया नहीं करेंगे तो ये संग्रहित संस्कार स्वतः क्षीण होते चले जायेंगे। अतः प्रमुख समता है।

एक बार कुछ लोग भगवानके पास आए पूछने कि भगवन! हमारा सही मंगल किस बात में है? तो भगवानने उन्हे मंगल धर्म समझाए। गृहस्थोंके लिए ३८ मंगल धर्म सिखाए। पहले से अगला उत्तम। इस तरह समझाते-समझाते अंतिम मंगल धर्म पर पहुँचे तो कहा :-

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि चित्तं यस्स न कम्पति।
असोकं विरजं खेमं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

लोक धर्मका स्पर्श होने पर----क्या हैं लोक धर्म? जीवनके ये ही उतार-चढ़ाव, बसंत-पतझड---- सुख-दुःख, यश-अपयश, लाभ-हानि, जय-पराजय---यही लोक धर्म। इनका स्पर्श होने पर जिसका चित्त कंपायमान नहीं होता. डांवाडोल नहीं होता, समतामें रहता है, "असोकं-शोक-रहित रहता है, "विरजं" विरज विमल रहता है, खेमं" योग-क्षेमसे भरपूर रहत। है, अगले क्षणके लिए निश्चित रहता है, पूर्ण सुरक्षित महसूस करता है, यों समता में रहता है तो उत्तम मंगल सधने लगता है।

कैसे समताका जीवन जीएँ? ऊपरसे दमन करके नहीं। भीतर से समता आनी शुरू हो ताकि ऊपर उसका प्रभाव प्रकट होने लगे। यदि गल्ती हुई भी, समता टूटी भी, चित्तधारा विषम हो भी गयी तो कितनी जल्दी पुनः होश आ गया, पुनः समतामें स्थित हो गए। इसीका अभ्यास करना है। शनैः शनैः ही सुधार होता है। शनैः शनैः ही दुःख-विमुक्ति होती है। पुराना कितना संग्रह है इस पर निर्भर है। किसीके पास कम संग्रह है वह जल्दी खत्म कर लेगा। यदि संग्रह ज्यादा है तो अधिक देर तक परिश्रम करके समाप्त करना होगा। सही तरीकेसे जितना-जितना संवर करेगा, उतना मुक्त होते ही चला जायेगा। किसी जातिका हो, किसी संप्रदायक हो, काला हो या गोरा हो फर्क क्या पड़ता है? कुदरतका कानून सब पर समानरूपसे लागू होता है। नाम चाहे जो हो-हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो, बौद्ध हो, इसाई हो-वही प्रबुद्ध हो जायेगा तो अच्छा इंसान हो जायेगा। अच्छा हिंदू, अच्छा मुसलमान, अच्छा जैन, अच्छा बौद्ध अच्छा इसाई अच्छा आदमी बन जायेगा। धर्म हमें अच्छा आदमी बनना सिखाता है। यह अच्छा आदमी बननेनकी विद्या है। अच्छे आदमी बनेंगे तो स्वयं भी सुखसे रहेंगे, औरोंके भी सुखका कारण बनेंगे। कैसे सही मानेमें बोधि जाग जाय, प्रबुद्ध हो जाय। कैसे सही मानेमें प्रज्ञा जाग जाय! सही मानेमें प्रज्ञामें स्थित हो जांय! स्थितप्रज्ञ बन जांय। अपनी-अपनी मेहनत पर निर्भर करता हैं।

हर आदमी अपना मालिक स्वयं- है। अपनी गति खुद ही बनाता है।

"अत्ता ही अत्तनो नाथो अत्ता ही अत्तनो गति"

इस क्षण क्या संस्कार डाले, यह उसके अपने अधिकारमें है। जो बीत गया सो बीत गया। उस पर कोई अधिकार नहीं। लेकिन यदि इस क्षण होशमें है तो वह वर्तमानका मालिक बन गया। सारी साधना इसी बातके लिए है कि इस क्षण होश है कि नहीं। प्रतिक्षण बीज बोने का क्षण है। कैसा बीज बोते हैं? यदि राग और द्वेषका बीज बो रहे हैं तो अपने लिए दुःख ही पैदा किए जा रहे हैं। कैसे इस दुःख-चक्रको पलटें? कैसे यह दुःख-चक्र धर्म-चक्रमे पलटे? कैसे यह लोक-चक्र मुक्ति-चक्रमें पल्टे? बौद्धिक स्तर पर भले सारी बात समझमें आ जाय लेकिन बिना अभ्यासके जीवनमें उतरती नहीं। दुःख-चक्र बढ़ानेवाला स्वभाव पलटकर कैसे धर्म-चक्रमें परिवर्तित हो, यह बिना अभ्यासके संभव नहीं होता। केवल कामना करने से या चमत्कारसे स्वभाव नहीं पलटता। यदि हमें स्वभाव पलटना है तो अभ्यास करना ही होगा। अभ्यास यही करना होगा कि कैसे राग द्वेष पैदा करना बंद करे। साधना इसीलिए है। इसे ठीक तरह से बौद्धिक स्तर पर समझ कर व्यवहारमें उतारना है, अभ्यासमें उतारना है। धारण करना है। धर्म धारण करते हैं तो ही सुख मिलता है। विधिके अनुसार ठीक-ठीक अभ्यास करें। सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

(पू. गुरुदेवके प्रवचनका श्री. रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

संपर्क

१)	इगतपुरी	इगतपुरी के लिए पत्रिका-प्रेषक पतेपर व्यवस्थापक से।
२)	हैदराबाद	१) श्रीमती ऊषाबेन पी. मेहता, ६१, श्रीनगर कॉलोनी, हैदराबाद-५०० ८७३. फोन : ३०२९१. अथवा २) श्री पुरनमल अग्रवाल, द्वारा-होटल राजधानी, सिद्धिअम्बर बाजार, हैदराबाद-५०० ०१२. फोन : ५७५७१
३)	जयपुर	श्री श्यामसुन्दर मून्दड़ा, द्वारा - मेसर्स श्याम कॉरपोरेशन, मुनोत निवास, रामलालजीका रस्ता, जौहरी बाजार, जयपुर-३०२ ००३. फोन : ६५४१४
४)	कलकत्ता	१) श्री सुदर्शन ढंढारिया, ४८-डी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७०० ००७. फोन : ३४४७९२ अथवा २) श्री. नागरमल पेडीवाल, पायोनियर प्लास्टिक, ९ इझरा स्ट्रीट, कलकत्ता-७०० ००१. फोन : २६४०८०/८१ ग्राम : प्लास्टिप्लाई
५)	जलपाई गुडी	श्री. फणीन्द्रलाल मुत्सद्दी, मुत्सद्दी इंजिनिअरिंग वर्कशॉप पो. काल, जलपाई गुड़ी (प. बंगाल)
६)	काठमांडो (नेपाल)	श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, कांति पथ, पो. बाक्स नं. १३३, काठमांडो (नेपाल) तार-हिमालआयरन, काठमांडो. फोन-आफिस : ११४९०, घर - ११२९०,

तार : अनुसंधान फोन : २२१५६५
मेसर्स तोषणीवाल ब्रदर्स (बम्बई) प्रा. लि.
१९८, जमशेदजी टाटा रोड, चर्चगेट,
बम्बई - ४०००२०
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

कदेक चणां चबावणै, कदे चकाचक माल।
कदे पुसाकां राजसी, कदेक फाट्या हाल॥
कदेक प्रथबी पोढणो, कदे पिलंगा पोस।
आलो सूखो देखकर, मत खोवै रै होस॥
संपद जावै या र वै, मिलै मान अपमान।
धीर पुरस अवचल र वै, सुख दुख एक समान॥
दिन पलटया बिपदा बढी, राख हियै मँह धीर।
सुख की घड़ियाँ सै हँसै, दुख हांसै सो बीर॥
त्यागै अन्तरजगत सूं, राग द्वेस का मैल।
सुख दुख सूं अविचल र वै, ज्यूं परबत, ज्यूं सैल॥
मन समता मँह थिर हुवै, हौवै दूर बिकार।
रोग सोक मतै मिटै, मिलै सांति सुख सार॥

ग्राम : प्रेमकेबल फोन : ४०३५१/८४५४७
मेसर्स दि प्रीमियर केबल कं लिमिटेड
१४/१५ एफ कॅनौट सर्कल
नई दिल्ली-११०००१
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दोहे धर्म के

संवेदन तो हो मगर, हो न राग ना द्वेष।
नए करम बांधे नहीं, होय पुरातन शेष॥
एक एक कर पापकी, परत उतरती जाय।
निर्मल निर्मल चित्तकी, चाल सुधरती जाय॥
ज्यों ज्यों अन्तर्जगतमें, समता बढ़ती जाय।
काया वाणी चित्तके, कर्म सुधरते जाय॥
राग छुटे समता बढ़े, मिले परम संतोष।
दूर होय बेचैनियाँ, मिले शांति सुख कोष॥
दुखियारों से जग भरा, सुखिया दिखे न कोय।
जो समता में स्थिर हुआ, सच्चा सुखिया सोय॥
संकट में ही धर्म की, सही परीक्षा होय।
मन की समता ना छुटे, धरमवन्त है सोय॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाउस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई-२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक-४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/-, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/- ● वार्षिक शुल्क रु. ५/-, आजीवन शुल्क रु. ५१/-

"विपश्यना"

नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To